नई शिक्षा नीति के नाम पर विशेषज्ञों को दुश्मन मत बनाइए

किरण भट्टी

“अनेक बार नीति निर्माण को जनभागीदारी बनाम विशेषज्ञता की बहस के तौर पर बांटकर देखा जाता है। क्या यह एक-दूसरे के विरोधी हैं? क्या सिर्फ जनभागीदारी से नीति निर्माण संभव है? क्या विशेषज्ञता को एकदम दरकिनार किया जा सकता है? यह लेख नई शिक्षा नीति पर चल रही बहस के संदर्भ में इन सवालों को उठाता है और कहता है कि इस बहस में जनभागीदारी के नाम पर विशेषज्ञता की अनदेखी की जा रही है।”

नई शिक्षा नीति के लिए केवल अभिभावकों से सुझाव आमंत्रित करके सरकार ने लोकतंत्रीकरण और विकेंद्रीकरण का आभास पैदा किया है मगर इससे सरकार को अपने पूर्व-निर्धारित एजेंडा को लागू करने की खुली छूट भी मिल गई है।

प्रस्तावित नई शिक्षा नीति पिछले कुछ महीनों से सुर्खियों में है। नीति निर्धारण के प्रति मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा अपनाए गए ताजा तौर-तरीकों पर भी काफी कुछ लिखा और कहा जा रहा है। सरकार हमें यकीन दिलाना चाहती है कि यह नीति निर्धारण का ऐसा लोकतंत्रीकरण है जैसा इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ जिसमें देश भर के एक-एक गांव की शिक्षा समिति इस बात पर चर्चा कर रही है कि उनके बच्चों को कैसी शिक्षा मिलनी चाहिए।

जैसा कि मंत्री महोदया ने बार-बार हमें याद दिलाया है, अभी तक केवल ‘अकादमिक और विशेषज्ञ’ ही तय करते थे कि शिक्षा नीति का रंग-ढर्रा कैसा होना चाहिए मगर अब पहली बार हमारे पास लोगों की आवाज है जो सब कुछ तय करेगी। उनका कहना है कि आखिरकार अभिभावक ही तो यह बता सकते हैं कि उनके बच्चों के लिए क्या बेहतर है और लिहाजा यह तय करने का मौका उन्हीं को क्यों न दिया जाए कि शिक्षा नीति कैसी हो? बेशक, उनकी बात तर्कसंगत बल्कि सराहनीय लगती है। मगर क्या वाकई स्थिति वैसी ही है जैसी बताई जा रही है?

पहली बात, जैसा कि पिछले दिनों आई कई टिप्पणियों में इस बात को रेखांकित किया जा चुका है, शिक्षा नीति पर चर्चाओं के लिए जिन मंचों को चुना गया है उनमें अभिभावकों का प्रतिनिधित्व हो, यह लाजिमी

नहीं है। और अगर इन मंचों पर स्कूल जाने वाले बच्चों के मां-बाप हैं तो भी इसकी संभावना कम ही है कि उनके बच्चे सरकारी स्कूलों में जा रहे होंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति मूल रूप से उन करोड़ों अभिभावकों को केंद्र में लाने का दावा कर रही है जो अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजते हैं, ऐसे मां-बाप जिनको स्थानीय निकायों में विरले ही कभी जगह मिल पाती है। फिर भी, आइए, महज तर्क के लिए मान लेते हैं कि इन मां-बाप को भी अपनी बात कहने का मौका मिलेगा। इसके बावजूद इस बात पर गौर करना जरूरी है कि उनसे किन बातों पर सुझाव मांगा जा रहा है और 'अकादमिकों और विशेषज्ञों' की राय पर इन मां-बाप की राय को तरजीह देना क्यों जरूरी है।

दूसरी बात, अकादमिकों और विशेषज्ञों पर तरह-तरह के लांछन क्यों लगाए जा रहे हैं? उन्हें एक ऐसा वर्ग बताया जा रहा है जो यह जानता ही नहीं कि लोग क्या चाहते हैं। इस बिंदु पर खुद शिक्षा की भूमिका पर और मौजूदा शिक्षा व्यवस्था की कार्यप्रणाली पर ही सवाल खड़ा हो जाता है। इसका निहितार्थ यह होगा कि अगर अकादमिक और विशेषज्ञ वाकई इतने जाहिल हैं जितना कि बताया जा रहा है तो समूचा शिक्षा तंत्र (जो अधिकांशतः राजकीय सहायता और नियंत्रण पर आश्रित रहा है) अकल्पनीय रूप से विफल साबित हो जाता है क्योंकि उसने ऐसे अकादमिक और विशेषज्ञ पैदा किए हैं जिनकी राय नीति निर्धारण के लिए रत्ती भर भी काम की नहीं है।

सलाह-मशविरे का भ्रम

मगर आइए सबसे पहले नीचे से ऊपर की ओर केंद्रित पद्धति और इस दावे को जरा नजदीक से देख लें कि नई नीति में मां-बाप की आवाज को प्रतिनिधित्व दिया जाएगा। ये कौनसे मां-बाप हैं जो यह तय करने के लिए अकादमिकों और विशेषज्ञों के मुकाबले ज्यादा सही राय दे सकते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति का स्वरूप कैसा होना चाहिए?

बहुत सारे मां-बाप हैं जो अपने बच्चों को अपने आसपास के निजी स्कूलों में भेजने में नाकाम रहे हैं। एसईसीसी अनुमानों के अनुसार, ग्रामीण आबादी में यह संख्या 50 प्रतिशत बैठती है। इनमें से ज्यादातर मां-बाप खुद निरक्षर हैं, ये वे लोग हैं जो घर में अपने बच्चों को अकादमिक सहायता मुहैया नहीं करा सकते, ये वे मां-बाप हैं जो पीटीए मीटिंगों में जाने से कतराते हैं कि कहीं मास्टरजी इस बात पर न झिड़क दें कि वे अपने बच्चों को 'गंदा' ही स्कूल भेज देते हैं, ये वे मां-बाप हैं जिनके दस्तखत के लिए स्कूल प्रबंधन समिति के रजिस्टर घर पर ही भिजवा दिए जाते हैं क्योंकि उनके नाम पर होने वाली मीटिंग के बारे में उनको इत्तिला तक नहीं दी जाती है; ये वे मां-बाप हैं जिनके बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं जा पाते क्योंकि उन्हें घर में भाई-बहनों को संभालना पड़ता है या मां-बाप के साथ हर साल मजदूरी के लिए गांवों-शहरों के धक्के खाने पड़ते हैं। ये ऐसे मां-बाप हैं जिनके बच्चे पांच साल की शिक्षा के बाद भी बमुश्किल पढ़ पाते हैं।

इन मां-बाप से पूछा जा रहा है कि:

- ❑ स्कूल में अध्यापकों की हाजिरी सुनिश्चित करने के लिए तकनीक का इस्तेमाल कैसे किया जाए?
- ❑ विज्ञान और गणित के लिए योग्य अध्यापकों की कमी को कैसे दूर किया जाए?
- ❑ विज्ञान और गणित शिक्षकों की जरूरत को पूरा करने के लिए डीएसटी के साथ कैसे काम किया जाए?
- ❑ पढ़ाने-सीखने की प्रक्रिया को और समृद्ध बनाने के लिए स्कूलों में आईसीटी (सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी) का कितना इस्तेमाल किया जा सकता है?

इसके अलावा स्कूली शिक्षा में आईसीटी के व्यापक इस्तेमाल; स्कूल प्रबंधन व्यवस्था; और 'विद्यार्थियों के शैक्षिक परिणामों में सुधार लाने हेतु विज्ञान, गणित एवं प्रौद्योगिकी अध्यापन के लिए नए ज्ञान, शिक्षाशास्त्र और पद्धतियों' जैसे शीर्षकों पर भी अलग से बहुत सारे सवाल पूछे गए हैं।

इस पूरी फेहरिस्त को देखकर पहली नजर में ही साफ हो जाता है कि ये सवाल मां-बाप और स्थानीय निकायों के प्रतिनिधियों के लिए नहीं बल्कि विशेषज्ञों से पूछे जाने वाले सवाल हैं। न केवल आम लोगों के लिए इन सवालों के

जवाब देना लगभग असंभव है बल्कि इन सवालों का उनकी जिंदगी और चिंताओं से कोई लेना-देना भी नहीं है। असल में, ज्यादातर थीम और सवाल प्रौद्योगिकी और कौशल विकास की दिशा में ही केंद्रित हैं। यह बात केंद्र सरकार के रुझान को दर्शाती है जो शिक्षा को उद्योग जगत के सीमित हितसाधन में रूपांतरित कर देने पर आमादा है बल्कि मानव संसाधन मंत्री की हालिया चर्चाओं (जिनको मंत्रालय की वेबसाइट पर अपलोड किया गया है) में सरकार का झुकाव साफ पता चल जाता है। लिहाजा, लोकतंत्रीकरण और विकेंद्रीकरण के नाम पर सिर्फ एक भ्रम पैदा किया जा रहा है जिसकी आड़ में सरकार अपना पूर्व-निर्धारित एजेंडा लागू कर सके।

इसमें कोई शक नहीं कि लोगों की राय मायने रखती है, उनसे सलाह लेते रहना जरूरी है बल्कि वास्तव में व्यवस्था कैसे काम कर रही है, इस बारे में सटीक जानकारियां हासिल करने के लिए तो लोगों की राय लेना बहुत ही जरूरी है ताकि कोई भी नीति ठोस तथ्यों पर आधारित हो। निर्वाचित सरकार और उसके निर्देशों पर काम करने वाली कार्यपालिका को नियमित रूप से अपने पास आने वाली सूचनाओं की सार्वजनिक पुष्टि की एक चाक-चौबंद व्यवस्था विकसित करनी चाहिए और इन जानकारियों को डेटा व्यवस्था में सटीक रूप से दर्ज करके उसे आम जनता और स्थानीय निकायों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए। साथ ही उसे सहभागिता के नए मंच विकसित करने चाहिएं और मौजूदा मंचों का सुदृढ़ीकरण करना चाहिए ताकि लोगों को लगातार अपनी चिंताएं व्यक्त करने का मौका मिले। सरकार को एक ऐसी व्यवस्था रचनी चाहिए जो सही मायनों में विकेंद्रीकृत प्रक्रियाओं के जरिए योजनाओं के निर्धारण में लोगों की हिस्सेदारी सुनिश्चित कर सके और उनकी जरूरतों व चिंताओं को प्रतिबिंबित कर सके।

खेद की बात यह है कि सूचनाओं के आदान-प्रदान; नियोजन या नीति निर्धारण में पुष्टि और सहभागिता की कोई मुकम्मल व्यवस्था विकसित करने, स्थानीय चिंताओं को जगह देने या विकेंद्रीकरण बढ़ाने के लिए क्या किया जा सकता है; इस बारे में एक भी विषय या प्रश्न सूचीबद्ध नहीं किया गया है। और जिन लोगों से सवाल पूछे जा रहे हैं, उनकी कोई भी चिंता इन विषयों या सवालों में जगह नहीं पा सकती है जो उनसे पूछे जा रहे हैं। जाहिर है लोगों की सहभागिता सरकार द्वारा एक बॉक्स में टिक का निशान लगाने से सुनिश्चित नहीं की जा सकती जिसे शायद अगले 20-30 साल तक, तब तक नहीं दोहराया जाएगा जब तक अगली राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर चर्चा शुरू नहीं होगी।

अकादमिक विशेषज्ञ और औद्योगिक विशेषज्ञ

प्रतिनिधित्व के सवाल को गड्डमड्ड करने के अलावा भी अकादमिकों और विशेषज्ञों का अपमान करने और उनको परे ढकेलने की चेष्टाएं हैरान करने वाली हैं। बेशक, बहुत सारे अकादमिक हैं जिनका काम ज्यादातर बड़ा बारीक लगता है और जमीनी हकीकत से सीधे जुड़ता दिखाई नहीं देता। मगर ऐसे अकादमिकों की भी कोई कमी नहीं है जिन्होंने अपना कॅरियर और अपनी ख्याति फील्ड आधारित अनुसंधानों और विश्लेषण के आधार पर बनाई है। स्कूलों की कार्यप्रणाली को समझने और शिक्षा व्यवस्था को बारीकी से समझने के लिए उन्होंने स्कूलों और संस्थानों में बेहिसाब समय दिया है। अकादमिक विशेषज्ञों के पास न केवल सूचनाओं को सटीक ढंग से इकट्ठा करने का प्रशिक्षण होता है, न केवल वे सर्वस्वीकृत और अधुनातन पद्धतियों का प्रयोग करते हैं बल्कि उनके पास देश के अन्य भागों और दुनिया भर की दूसरी व्यवस्थाओं और स्कूलों के बारे में भी सालों लंबा अध्ययन और विशेषज्ञता होती है। यह व्यापक परिप्रेक्ष्य उन्हें एक ऐसी सुविधाजनक स्थिति में पहुंचा देता है जो आम लोगों की पहुंच से परे है। भला इस सारी कठोर मेहनत को निरर्थक क्यों मान लिया जाए, खासतौर से तब जबकि नीति निर्धारण के लिए जो थीम चुनी गई हैं वे बेहद 'तकनीकी' किस्म की हैं और लिहाजा आम लोगों की जिंदगी में उनका वैसा वजूद नहीं है कि वे उन पर कोई मुकम्मल राय दे सकें।

यहां एक अहम् सवाल उठता हैः अगर सरकार को लोकतंत्रीकरण की इतनी ही फिक्र है तो क्या सरकार अपनी आर्थिक नीति को तय करने के लिए भी इसी तरह की प्रक्रिया अपनाना चाहेगी? क्या वह अर्थव्यवस्था के विशेषज्ञों को परे धकेल कर सीधे लोगों की राय मांगने को तैयार होगी? इसका जवाब सभी जानते हैं। क्या इसकी वजह यह है कि

सरकार के हिसाब से एक विषय के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञ नहीं होते या इस क्षेत्र में नीति निर्धारण के लिए विशेषज्ञों की जरूरत नहीं होगी? अकसर सुनाई पड़ता है कि 'पढ़ा तो कोई भी सकता है' और हाल के सालों में इस दावे को कुछ ज्यादा ही लोकप्रियता मिली है और नीति निर्धारण में भी इसकी अनुगूंज साफ सुनाई पड़ने लगी है। विडंबना यह है कि यह दलील अर्थशास्त्र के 'विशेषज्ञों' की तरफ से ही आ रही है कि प्रशिक्षित अध्यापकों को पेशेवर तनख्वाह देने की न तो सरकार को जरूरत है और न ही उसकी इतनी क्षमता है। 'मेक इन इंडिया' को एक कारीगरी कार्यक्रम में तब्दील कर देने और बेसिक शिक्षा पर जरा-सा भी ध्यान न देने पर आमादा उद्योग जगत से भी इसी तरह की राय आ रही है और उसको भी बिना हीले-हवाले के स्वीकार कर लिया जाता है। ऐसे में तो यही लगता है कि शिक्षा नीति अगर अर्थशास्त्र या उद्योग जगत के 'विशेषज्ञों' की देखरेख में चले तब तो ठीक है मगर वह शिक्षा जगत के विशेषज्ञों की देखरेख में चले, यह कतई बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। ◆

(यह लेख अंग्रेजी ऑनलाइन 'द वायर' से साभार प्रकाशित किया गया है। मूल लेख 'द वायर' में 18/09/2015 को प्रकाशित हुआ है)

लेखिका परिचयः किरण भट्टी सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च, नई दिल्ली में सीनियर फैलो और फोरम फॉर डेलिबरेशन ऑन एजुकेशन की संस्थापक सदस्य हैं।

भाषान्तरः योगेन्द्र दत्त

विज्ञापन

शैक्षिक मूल्यांकन विशेषांक

परिप्रेक्ष्य एवं रुझान • सोच की दिशा • जमीनी अनुभव

इस अंक में...

- ❑ प्रो. कृष्ण कुमार
- ❑ दिशा नवानी
- ❑ रोहित धनकर
- ❑ जैकब थारू
- ❑ हृदयकांत दीवान
- ❑ सुशील जोशी
- ❑ कमला वी. मुकुंदा
- ❑ राजाराम भादू
- ❑ डेबोरा विलिस
- ❑ एवं अन्य 11 लेख

यह विशेषांक पाठकों की मांग पर दो बार मुद्रित करवाया जा चुका है। तीसरी बार मुद्रण की तैयारी की जा रही है।

अपनी प्रति मंगवाने के लिए ऑर्डर करें।

'शैक्षिक मूल्यांकन विशेषांक'
कुल पृष्ठः 148 (कवर सहित)
मूल्यः व्यक्तिगत 150 रुपये; संस्थागत 200 रुपये

मंगवाने के लिए संपर्क करें:

शिक्षा विमर्श
दिगन्तर, खो नागोरियान रोड, जगतपुरा, जयपुर-17 राजस्थान
फोनः (141) 2750230, 2750310 मो. 9214181380 (प्रसार प्रबंधक)
ईमेलः shikshavimarsh@gmail.com वेबसाइटः www.digantar.org